कहानी अलग अलग परन्तु स्थिति एक सी
सहस्त्रों प्रयास के बाद भी प्राप्त करने में असफल रहने पर

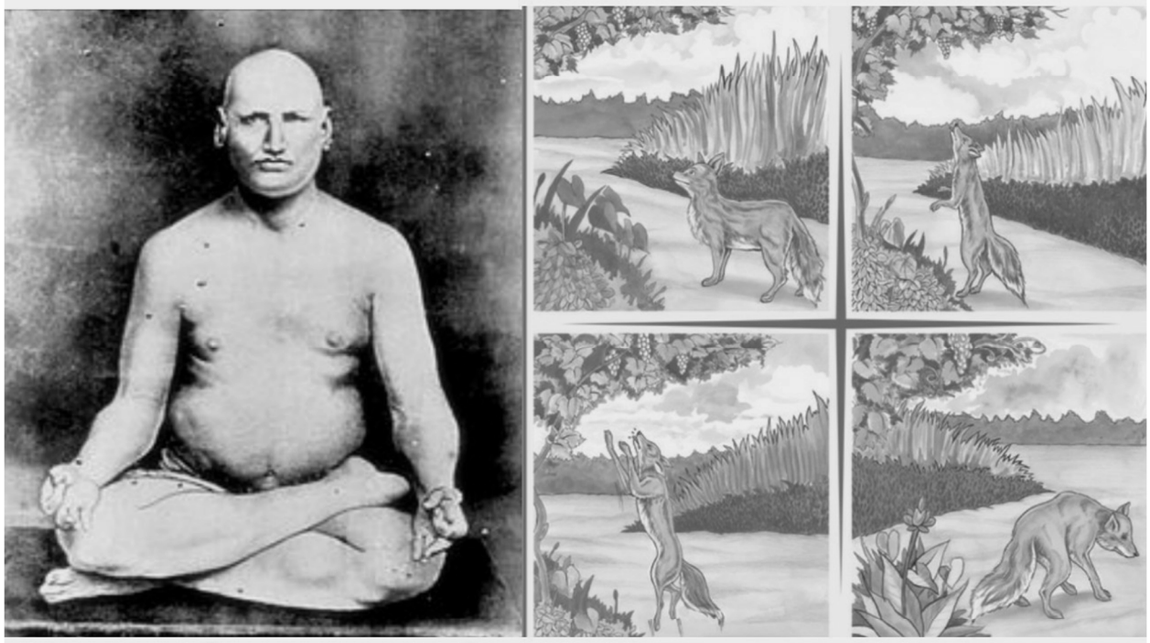

ईश्वर निराकार है

अंगूर खट्टे है

www.facebook.com/polparkash

दयानंद आत्मचरित (एक अधूरा सच)

स्वामी दयानंद एक साधारण मनुष्य थे, और उनके अंदर भी साधारण मनुष्यों की ही भाँति सभी गुण व दोष मौजूद थे, इसीलिए जब उन्होंने अपना आत्मचरित दुनिया के सामने रखा तो निश्चित ही एक साधारण मनुष्य की भाँति सिर्फ उनकी अच्छी बाते ही दुनिया तक पहुंचे ऐसी कोशिश की होगी, और यही किया भी, क्योकि जब हम इतिहास पर दृष्टि डालते है और उनका जीवन चरित्र पढ़ते है तो हमे केवल वही दिखता है जो वो हमें दिखाना चाहते होंगे, कौन जाने सच क्या होगा?

क्योकि उनके जीवन चरित्र में काफी बातें ऐसी हैं जो आधे अधूरे सच की तरफ इशारा करती है, जिनकी प्रमाणिकता इतिहास के अंधेरों में सदा सदा के लिए खो गयी है, जैसे-

१• स्वामी दयानंद का जन्म-

(अ) आर्य समाजी गपोड़ा- स्वामी दयानंद का जन्म गुजरात प्रान्त के काठियावाड़ के मौरवी राज्य में टंकारा नामक ग्राम में १२ फरवरी १८२४ को हुआ था।

(ब) स्वामी दयानंद के अनुसार- दयानंद ने अपनी जीवनी सन् १८७६ में लिखीं और १८८०, में थियोसोफिस्ट पत्र में उसे छपवाया।

दयानंद अपने आत्मचरित के पृष्ठ संख्या १ में लिखते हैं कि- मैंने जिस परिवार में जन्मग्रहण किया वह एक विस्तृत सम्पत्तिसम्पन्न

परिवार था, हमारा कुटुम्ब इस समय १५ पृथक-पृथक परिवारों में विभक्त है और इस समय मेरी अवस्था ४६ वा ५० वर्ष की है।

समीक्षा-- ऊपर लिखीं दोनों ही वर्ता जिसमें एक तो दयानंदीयों द्वारा तैयार कल्पित दयानंद चरित और दूसरी स्वयं दयानंद द्वारा लिखीं आत्मचरित है, इन दोनों में से कौन सी बात सत्य मानें और कौन सी असत्य, यह तो अब हमारे दयानंदी भाई ही बता सकते हैं, अब जबकि दयानंद ने अपने आत्मचरित में यह स्पष्ट लिखा है कि इस आत्मचरित को लिखते समय अर्थात १८७६ में उनकी उम्र ४६ वा ५० वर्ष की है अर्थात स्वयं स्वामी जी को ही अपनी ठीक-ठीक उम्र का पता नहीं था, उनके इस लेखानुसार उनका जन्म १८२२ से १८२६ के आसपास हुआ था, परन्तु हमारे दयानंदी भाई तो यह कहते हैं कि "दयानंद जी का जन्म गुजरात प्रान्त के काठियावाड़ के मौरवी राज्य में टंकारा नामक ग्राम में १२ फरवरी १८२४ को हुआ था" दयानंदी यह बात इतने विश्वास के साथ लिखते हैं जैसे मानों दयानंद के जन्म के समय वही पर उपस्थित थे, सो यहाँ आर्य समाजीयों से हमारा यह प्रश्न है कि जब दयानंद को ही अपनी ठीक-ठीक उम्र का पता नहीं था, तो फिर दयानंदी किस आधार पर इतने विश्वास के साथ यह कहते हैं कि दयानंद का जन्म १२ फरवरी १८२४ को हुआ था, दयानंदी इस बात को साफ करें कि वह इनमें से कौन सी बात सत्य मानते हैं जो स्वयं दयानंद ने अपने आत्मचरित में लिखीं हैं या फिर दयानंद के अन्ध भक्त नियोगी चमचों द्वारा तैयार यह कल्पित दयानंद चरित?

२• दयानंद के बचपन का नाम, उनके माता और पिता का नाम आदि-

(अ) आर्य समाजी गपोड़ा- दयानंदीयों के अनुसार स्वामी दयानंद के बचपन का नाम मूलजी दयाराम था तो कुछ कहते हैं कि उनके बचपन का नाम मूलशंकर था, इसी प्रकार दयानंद के माता, पिता के बारे में कुछ लोग कहते हैं कि उनके पिता का नाम अम्बाशंकर और माता का नाम यशोदाबाई था, तो वही कुछ का कहना है कि उनके पिता का नाम करशनजी लालजी त्रिवेदी और माता का नाम यशोदाबाई था।

अब आइए दयानंद क्या कहते हैं वो भी देख लेते हैं।

(ब) दयानंद के अनुसार- दयानंद अपने आत्मचरित के पृष्ठ संख्या १ में लिखते हैं कि- अनेक लोग यह जिज्ञासा करते हैं मैं ब्राह्मण हूँ वा नही, और वे लोग अनुरोध करते हैं कि इसके प्रमाण के लिए अपने कुटुम्बियों का नाम बतलाओं अथवा उनमें से किसी का लिखा हुआ कोई पत्र दिखलाओं, ये कहना अनावश्यक है कि गुजरातवासी लोगों के साथ मैं अधिकतर अनुरागसुत्र में निबद्ध हूँ, अपने कुटुम्बियों के साथ यदि मेरा किसी प्रकार से साक्षात् हो जाए, तो जिस सांसारिक अशांति से मैंने अपने आप को स्वतंत्र किया हैं फिर मुझे उसी अशांतिजाल में निश्चय ही फसना होगा, इसी कारण से मैं अपने कुटुम्बियों के नाम बतलाना व उनमें से किसी का लिखा पत्र प्रदर्शन करना उचित नहीं समझता।

समीक्षा-- अब यह बात तो हमें हमारे दयानंदी भाई समझा सकते हैं कि जब स्वामी दयानंद ने अपने आत्मचरित में अपने माता पिता कुल गोत्र आदि के बारे मे कुछ भी लिखने वा बताने से साफ-साफ

मना कर दिया, तो फिर दयानंदी किस आधार पर इतने विश्वास के साथ यह बात कहते हैं कि "दयानंद की माता का नाम यशोदाबाई और उनके दो नियोगी पिता जिनके नाम क्रमशः अम्बाशंकर और करशनजी लालजी त्रिवेदी थे, वैसे यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है क्योंकि स्वामी जी के मतानुसार एक स्त्री एकादश (ग्यारह) पति तक कर सकती है, जब यह हाल है कि एक स्त्री के ग्यारह पति हो सकते हैं तो फिर स्वामी दयानंद जी के दो पिता क्यों नहीं हो सकते? शाबाश! दयानंदीयों ऐसे ही लगें रहो और मैं तो कहता हूँ एक बार फिर से जाँच करें, क्या पता यशोदाबाई के दो से अधिक नियोगी पति सिद्ध हो जाये।

स्वामी जी के इस लेख से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी के जन्म और उनके वर्ण का पता लग पाना लगभग असंभव है, और ऐसे व्यक्ति के लिए स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश प्रथम संस्करण के पृष्ठ ६७ में लिखते हैं कि मलेच्छ नाम निंदित नहीं है जिन पुरुषों के आचरण में वर्णों का स्पष्ट उच्चारण नहीं होता उनका नाम मलेच्छ है,

दयानंद के लेखानुसार वे मलेच्छ ठहरें अब दयानंदीयों को अधिकार है कि वह अपने गुरु की आज्ञा को स्वीकार करें या फिर तिरस्कार,

और सुनिये इसी लेख में आगे दयानंद जी लिखते हैं कि “अपने कुटुम्बियों के साथ यदि मेरा किसी प्रकार साक्षात् हो जाये तो जिस सांसारिक अशांति से मैंने अपने आपको स्वतंत्र किया हैं फिर मुझे उसी अशांतिजाल में निश्चय ही फसना होगा”

अब यहाँ स्वामी जी से हमारा यह प्रश्न है कि उन्होंने यह बात क्या सोचकर लिखीं हैं? यह भ्रम स्वामी जी के मन में कैसे उत्पन्न हो गया कि उन्होंने सांसारिक अशांति से स्वयं को स्वतंत्र कर लिया, शायद यहाँ स्वामी दयानंद अपने आप को अज्ञानवश सन्यासी समझ बैठे हैं, इस कारण यह बात लिख दी हो, परन्तु सन्यासीयों वाले लक्षण स्वामी जी में दिखते नहीं, सुनिये कठोपनिषद में इस प्रकार कथन है कि—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।

नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

~कठोपनिषद {वल्ली २, मंत्र २४}

जो दुराचार से पृथक नहीं, जिसका मन शांत नहीं, जिसकी आत्मा योगी नहीं वह सन्यास लेकर भी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता, अर्थात उसका सन्यास लेना व्यर्थ है, जो पुरुष काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, इन पांच विकारों से मुक्त है वही सन्यासी है।

परन्तु स्वामी जी में तो यह इच्छाएं और अवगुण कूट-कूट के भरी हुई हैं, भला सन्यासी होकर चोंगा बूट जुता पहनना, घड़ी बांधना, हुक्का पिना, कुर्सी मेज प्रयोग करना, रूपयाँ बटोरना, मांसभक्षियों के हाथ से भोजन लेकर भोजन करना, क्रोध करना, गालियाँ देना किस ग्रथ में लिखा है और सांसारिक अशांति किसे कहते हैं? इसे ही तो कहते हैं, और दयानंद जी ने संसार का त्याग किया ही कब? सन्यासी तो उसे कहते हैं जो संसार के व्यवहार से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता, लोक में जन निंदा करें वा स्तुति, और अप्रतिष्ठा करें तो भी जिसके चित्त में कुछ हर्ष शोक न हो वही सन्यासी कहलाने योग्य है लेकिन दयानंद जी की तो कोई निंदा करता है तो उन्हें

कितना दुख होता है तुरन्त उसको उत्तर देने में कटिबद्ध हो उस पर गालियों की वर्षा करने लगते हैं, वितैषणा का त्याग भी स्वामी जी के अन्दर नहीं पाया जाता, धन की इच्छा तो स्वामी जी के अन्दर इस हद तक है कि उसकी पूर्ति नहीं होती, धन की प्राप्ति के लिए कैसे-कैसे प्रयत्न किये, भीख माँग-माँग कर अपना निजी यंत्रालय खोला, उसके पश्चात भी पुस्तकों के मुल्य दोगुने तीनगुने रखें, तुम्हारी पुस्तक कोई और न छाप सकें इसलिए उसकी रजिस्ट्री करवाईं, उपदेश मण्डली के नाम से एकलक्ष्य रूपयाँ एकत्रित करने में यथाशक्ति प्रयत्न किया गया, लोभ ने तुम्हारे मन में यहाँ तक निवास किया था कि धनवानों पूंजीपतियों से प्रितिसमेत घंटों वर्ता होती थी निर्धनों की तो बूझ ही न थी, प्रतिष्ठा इतनी चाहते थे कि हमेशा कोठी, बंगलें और महलों में ही ठहरते थे, पुत्र तो था ही नहीं परन्तु जो मुख्य सेवकादि है उनमें तुम प्रिति करते हो, कामवासना तो मन में ऐसे भरी थी कि अपने अश्लील लेख एवं भाष्यों से वेदभाष्य और स्वयं निर्मित ग्रंथों को भर दिया,

तो लो तुम इन सब विकारों से मुक्त नहीं इसलिए सन्यासी भी नहीं हो, इससे तुम्हारे मन में उत्पन्न यह भ्रम की तुमने सांसारिक अशांति का त्याग कर दिया, मिथ्या सिद्ध हुआ।

३• पिता से घृणा और माता से प्रेम का रहस्य-

दयानंद अपने आत्मचरित के पृष्ठ संख्या २-५ में लिखते हैं- मेरा परिवार शैवमतवालम्बी था, इसलिए अल्पवय से ही मुझे शिवलिंग

की पूजा करनी पड़ी मैं अपेक्षया सबेरे आहार किया करता था और शिवपुजा में बहुत से उपसवास और कठोरता सहन करनी पड़ती हैं इसलिए स्वास्थ्य की हानि के भय से माता मुझे प्रतिदिन शिव की उपासना करने से रोका करती थी, परन्तु पिता उसका प्रतिवाद किया करते थे, इस कारण इस विषय को लेकर माता के साथ पिता का प्रायः विवाद रहा करता था, माता के बारंबार प्रतिदिन शिवपुजा के करने से निषेध करने पर भी पिता मुझको उसके करने के लिए कठोर आदेश किया करते थे, शिवरात्रि के आने पर पिता ने कहा कि आज तुम्हारी दीक्षा होगी, और मंदिर में जाकर सारी रात जागना होगा, पिता की आज्ञानुसार मैं उस दिन रात्रि को अन्यान्य लोगों के साथ सम्मिलित होकर शिवमंदिर गया, शिवरात्रि का जागरण चार पहरों में विभक्त होता है २ पहर बीत जाने के पश्चात तीसरे पहर में मैंने पिता से घर लौटने की अनुमति मांगी, पिता ने आज्ञा देकर मेरे साथ एक सिपाही कर दिया और इस विषय में कि मैं भोजन करके वृतभंग ने करू बारंबार मुझसे कह दिया, परन्तु घर में आकर जब मैंने माता से क्षुधा की कथा को प्रकाशित किया, तब उन्होंने जो कुछ भी मुझे आहार के लिए दिया उसको मैं बिना खाएँ न रह सका, भोजन के पश्चात मुझे गहरी नींद आ गई दुसरे दिन प्रात:काल पिता ने घर में आकर सुना कि मैंने व्रत भंग किया हैं, यह सुनकर वह मेरे ऊपर बड़े क्रोधित हुए और मुझे भला बुरा कहने लगे इस विषय को लेकर फिर से माता और पिता के बीच विवाद हुआ।

समीक्षा-- इस लेख को पढ़ने के पश्चात विद्वान लोग आसानी से यह बात समझ सकते हैं कि मूलशंकर बचपन से इतना मूढ़, हठी, ढ़िठ और नास्तिक प्रवृत्ति का क्यों रहा था?

दयानंद को यदि कलयुगी रावण कहें तो यह कहना गलत न होगा, यदि स्वामी जी के पिता ऋषि विश्रवा, तो उनकी माता राक्षसी कैकसी के समान थी और उसका रिजल्ट (परिणाम) धर्म का नाश करने वाला नास्तिक शिरोमणि मूलशंकर हुआ, मूलशंकर के पिता जहाँ उसे धर्म के मार्ग पर ले जा रहे थे, तो दूसरी ओर उसकी माता उसे अपने स्वभाव अनुसार राक्षसी शिक्षा से पोषित कर रही थीं, इसका परिणाम यह हुआ कि जो-जो धर्म कर्म वेदानुसार है उसकी माता ने उससे उल्ट शिक्षा कर मूलशंकर को अधर्मी और नास्तिक प्रवृत्ति का बना दिया, और आगे चलकर वही उसके जीवन का उद्देश्य बन गया, जैसे उसकी माता उसे धर्म कर्म के मार्ग से विमुख कर भौतिकवाद की तरफ ले गई, ठिक उसी प्रकार मूलशंकर भारतवर्ष में घुम-घुम कर धर्म कर्म करने वाले जो व्यक्ति उनसे मिलते उनसे सनातन कर्मकांडों का निषेध कर उनको भ्रमित करते, और जैसा कि इस लेख से स्पष्ट है स्वामी दयानंद बचपन से ही पेटू थे, और इस बात को दयानंद ने अपने इस लेख में स्वीकार भी किया है, पिता उन्हें व्रत आदि करने को कहते परन्तु मूलशंकर से भूख बर्दाश्त नहीं होती थी, क्योकि उसकी माता अक्सर चोरी से उन्हें भोजन करवा उनका व्रत भंग करवा देती, पर जब यह बात उनके पिता को पता चलती कि उन्होंने उनके आदेश की अवहेलना करते हुए व्रत भंग कर दिया, तो वे उनपे क्रोधित हो जाते और उन्हें इसके लिए दंडित करते,इसी कारण मूलशंकर कि माता और पिता

का प्रायः विवाद रहा करता था, ऐसे में स्वामी जी को अपने पिता किसी शत्रु से कम नहीं लगते जो अपने नियम धर्म कर्म से उनकी भोगविलास वाले जीवन में अशांति उत्पन्न कर रहे थे, यही कारण था कि मूलशंकर अपने पिता से घृणा करने लगा, पिता उसे जो करने को कहते मूलशंकर उससे उल्टा ही करता, और इसी घृणा ने मूलशंकर को नास्तिक बना दिया।

४• मूर्ति (प्रतिक) पुजा में अविश्वास-

(अ) आर्य समाजी गपोड़ा- उनके जीवन में ऐसी बहुत सी घटनाएं हुईं, जिन्होंने उन्हें सनातन धर्म की पारम्परिक मान्यताओं और ईश्वर के बारे में गंभीर प्रश्न पूछने के लिए विवश कर दिया, एक बार शिवरात्रि की घटना है, तब वे बालक ही थे, शिवरात्रि के उस दिन उनका पूरा परिवार रात्रि जागरण के लिए एक मन्दिर में ही रुका हुआ था, सारे परिवार के सो जाने के पश्चात् भी वे जागते रहे कि भगवान शिव आयेंगे उसे दर्शन देंगे और प्रसाद ग्रहण करेंगे, उन्होंने देखा कि शिवजी के लिए रखे भोग को चूहे खा रहे हैं, यह देख कर वे बहुत आश्चर्यचकित हुए और सोचने लगे कि जो ईश्वर स्वयं को चढ़ाये गये प्रसाद की रक्षा नहीं कर सकता वह मानवता की रक्षा क्या करेगा? इस बात पर उन्होंने अपने पिता से बहस की और तर्क दिया कि हमें ऐसे असहाय ईश्वर की उपासना नहीं करनी चाहिए।

(ब) स्वामी दयानंद के अनुसार- दयानंद अपने आत्मचरित के पृष्ठ संख्या ३-४ में लिखते हैं- दो पहरों के पश्चात जब निशिथ काल आया, तब पुरोहित और अन्यान्य लोग मंदिर के बाहर चले गए, उसके कुछ समय पश्चात मैंने देखा कई एक चुहे बिल में से बाहर

निकल कर महादेव की पिण्डी के ऊपर इच्छापूर्वक विचरण और उनके मस्तकस्थित चावलआदि का भक्षण करने लगे, मै जागते हुए इस दृश्य को देखता रहा, इस कारण इस दृश्य को देखते समय मेरे सरल अन्त:करण में यह प्रश्न उठा कि जो कई कई सौ दुर्दमनीय दानवों के संहार में समर्थ है, वे अपनी देह पर से थोड़े से चूहों को दूर करने में समर्थ क्यों नहीं, इस प्रश्न को बहुत देर तक सोचते सोचते मेरे मस्तिष्क घूमने लगा, जिस कारण मैं पिता की निद्रा भंग किए बिना रह सका जब पिता जागे, तो मैंने इस प्रश्नको पूछा, जिज्ञासित प्रश्न के उत्तर में पिता ने मुझे समझाते हुए कहा- "तु अल्पबुद्धि बालक है यह तो केवल महादेव का प्रतीक मात्र है" पिता के इस प्रकार के उत्तर से मैं संतुष्ट न हो सका, इसलिए मैंने उसी स्थान और उसी क्षण यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं त्रिशूलधारी महादेव के दर्शन नहीं करूँगा, तो मैं किसी प्रकार से भी उसकी आराधना नहीं करूँगा।

"इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके मैं घर लौट आया और माता से यह कहकर कि मैं बहुत भूखा हूँ खाने को पदार्थ मांगा"

समीक्षा-- स्वामी जी आपके पिता ने सहीं कहा था यदि आप अल्पबुद्धि नहीं होते तो इस प्रकार की उटपटांग बातें न करते, वेदादि ग्रंथों में सही कहा गया है कि—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।

जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

ऐसे मुढ़ विद्या शून्य रहकर भी बुद्धिमान बनते हैं और इस माया रूपी जगत् में उसी प्रकार भटकते है जिस प्रकार अन्धे के नेतृत्व में अन्धे चलते हुए भटकते है

यह उपनिषद वचन है जो नेत्रहीन विरजानंद के चैलें दयानंद पर बिल्कुल ठीक बैठती है, यदि दयानंद के अंदर उस चूहे जितनी भी बुद्धि होती तो वो ऐसी मूर्खतापूर्ण बात कभी न करते, स्वामी जी ने यदि कभी वेदआदि ग्रंथों का अध्ययन किया होता तो शायद वें इन श्रुतियों के यथार्थ अर्थ समझ पाते देखिये वेदों में इस प्रकार कथन है कि—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

~ऋग्वेद {१०/१२९/१}

(तदानीं)- महाप्रलय काल में, (असत्)- अपरा माया, (न)- नहीं थी, (सत्)- जीव भी, (नो)- नहीं, (आसीत्)- था, (रजः)- रजोगुण भी, (न)- नहीं, (आसीत्) था, (यत्)- जो, (व्योम)- आकाश तमोगुण, (अपरः)- सतोगुण, (नो)- नहीं था, (कुहकस्य)- इन्द्रजाल रूप, (शर्मन्)- ब्रह्मांड के चारों ओर जो, (आवरीवः)- तत्व समूह का आवरण होता है, (तत्) (किं) (नकिमप्यासीत्)- वह भी नहीं था, (गहनंगभीरं)- गहन गंभीर, (अंभः)- जल, (किं आसीत्)- क्या था? अर्थात नहीं था

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

~ऋग्वेद {१०/१२९/२}

(तर्हि)- उस समय, (मृत्यु)- मृत्यु, (न) नही, (आसीत्)- थी, और (अमृतं)- अमृतत्व अर्थात जीवन भी, (न)- नही, (आसीत्)- था, (रात्र्या: अह्न:)- रात और दिन का, (प्रकेत:)- ज्ञान, (न आसीत्)- नही था, सिर्फ (स्वधया)- अपनी परा शक्ति से, (एकं)- अभिन्न एक, (तत्)- ब्रह्म ही, (आसीत्)- था, (तस्मात् ह)- उस सर्वशक्तिमान से, (अन्यत्)- अन्य, (किंच)- और कुछ भी, (न)- नही, (आसीत्)- था।

अब विचारने की बात है जबकि सृष्टि रचना के पूर्व एक ब्रह्म के अलावा कुछ भी नहीं था, और फिर सब कुछ उससे ही उत्पन्न हुआ, तो क्या वह कण-कण मे विद्यमान न हुआ, और सुनिये,

हिरण्यगर्भः सम् अवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिर् एक ऽ आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्याम् उतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

~यजुर्वेद {१३/४}

सृष्टि के प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ पुरुष (प्रजापति ब्रह्मा) सम्पूर्ण ब्रह्मांड के एक मात्र उत्पादक और पालक रहे, वही स्वर्ग अंतरिक्ष और पृथ्वी को धारण करने वाले हैं, उस प्रजापति के लिए हम आहुति समर्पित करते है।

य ऽ इमा विश्वा भुवनानि जुह्वद् ऋषिर् होता न्य् असीदत् पिता नः।

स ऽ आशिषा द्रविणम् इच्छमानः प्रथमच्छदवराँ ऽ आ विवेश॥

~यजुर्वेद {१७/१७}

(य:)- जो, (ऋषि)- अतीन्द्रेयदृष्टा सर्वज्ञ, (इमा:)- इस, (होता)- संसार रूप होम का कर्ता, (न:)-हमारा, (पिता)- जनक उत्पन्न करने वाला परमात्मा, (विश्वा)- सब, (भुवनानि)- लोक लोकान्तरों को, (जुह्वत)-

प्रलयकाल में संहार करता हुआ, (न्यसीद)- अकेला ही स्थित हुआ, (स:)- वह परमेश्वर, (प्रथमच्छत)- प्रथम एक अद्वितीयरूप में प्रविष्ट होता, (आशिषा)- फिर अपने सामर्थ्य से सृष्टि रचना की इच्छा से, (द्रविणम्)- इस द्रव्यरूप जगत को, (इच्छमान:)-इच्छा करता हुआ, (अवरान्)- मायाविकार व्यष्टि समष्टि देहों में, (आविवेश)- अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हुआ।

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा विजायते।

तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

~यजुर्वेद {३१/१९}

प्रजापालक परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण विद्यमान है, वह अजन्मा होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होता है, उसकी कारण शक्ति में सम्पूर्ण भुवन समाहित हैं, ज्ञानी जन उसके मुख्य स्वरूप को देख पाते हैं, और सुनिये--

एतावान् अस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।

पादो ऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपाद् अस्यामृतं दिवि॥

~[यजुर्वेद : अ० ३१, मंत्र ३]

यह त्रिकालात्मक विश्व उस ईश्वर की महिमा ही है, किन्तु उसकी महत्ता इससे भी अधिक है, यह सम्पूर्ण विश्व जीवों सहित जो कुछ भी है उसकी महिमा का एक भाग है, और शेष तीन भाग में प्रकाशमान मोक्ष स्वरूप आप है। और श्रीमद्भगवद्गीता में भी इस प्रकार लिखा है कि (बुद्धे: परतस्तु स:) कि वह परमेश्वर बुद्धि से परे है जब वह बुद्धि से परे है तो भला दयानंद जैसा नास्तिक उसके स्वरूप को कैसे जान सकता है?

यत्किञ्च जगत्यां जगत्॥१॥ ~ईश० उपनिषद

अर्थात् उस परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण विश्व मे यह जड़चेतन स्वरूप जो विश्व है, वह सर्व ईश्वर से परिपूर्ण है, अर्थात वह कण-कण मे विद्यमान है, इसी कारण उपनिषद आदि ग्रन्थों मे यह कथन है कि--

“यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते।

अथ तस्य भयं भवति। तत्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य।

तदप्येष श्लोको भवति॥“

जब तक जीव परमात्मा से किंचित् भी भेद रखता है, तब तक वह अज्ञान रूपी भय से नहीं छूट पाता, वही भय अहंकारी विद्वान को भी हो जाता है।

यदि स्वामी जी में इन वेद वचनों को समझने भर की थोड़ी भी समझ होती तो शायद वह मूर्खों की भांति ऐसी बात कभी न करते, और सुनिये, ये दयानंद वही दयानंद है जो एक समय शुद्ध चैतन्य के नाम से जाने जाते थे और अपने आपको ही ब्रह्म मानते थे, और ऐसा मुर्ख ये कहता है कि जब तक महादेव मुझे दर्शन नहीं देते मैं उनकी किसी प्रकार से भी आराधना नहीं करूँगा यह देखिये इस नास्तिक को क्या बोल गया, इसी को अनीश्वरवादी कहते हैं, सहस्रों ऋषि मुनि संसार का त्याग कर, मन में सिर्फ परमात्मा का स्वरूप जानने की इच्छा लिए आरण्य में वर्षों कठिन तपस्या किया करते थे और आज भी करते हैं, और एक यह की नन्ही जान जैसी वैश्या के हाथों मृत्यु को प्राप्त होने वाला मन में ईश्वर के दर्शन करने की इच्छा लिए हडताल पर बैठा है, कि जब तक दर्शन नहीं कर लूगाँ तब तक ईश्वर के अस्तित्व को न स्वीकारूगाँ, धन्य हे! तेरी बुद्धि,

अब तो दयानंदी ही हमें बताए कि क्या दयानंद ने अपने मतानुसार निराकार ब्रह्म के दर्शन कर लिए थे? या पुरे जीवन हडताल पर बैठे रहे, क्योकी बिना दर्शन किए तो दयानंद ईश्वर की स्तुति करने से साफ मना करते हैं।

इसका मतलब दयानंद ने अपने जीवन में कभी भी ईश्वर की स्तुति की ही नहीं पुरी जिंदगी नास्तिक ही बने रहे, अब जब यह हाल है कि समाज का संस्थापक स्वयं नास्तिकतावाद की राह पर चल पड़ा तो उसके चैलों का क्या कहना, वह क्या किसी को धर्म का मार्ग दिखायेगा, जो स्वयं मार्ग से भटक चुका है।

५• दयानंद के गृह त्याग का रहस्य-

(अ) आर्य समाजी गपोड़ा- अपनी छोटी बहन और चाचा की हैजे के कारण हुई मृत्यु से वे जीवन-मरण के अर्थ पर गहराई से सोचने लगे और ऐसे प्रश्न करने लगे जिससे उनके माता पिता चिन्तित रहने लगे, तब उनके माता-पिता ने उनका विवाह किशोरावस्था के प्रारम्भ में ही करने का निर्णय किया (१९ वीं सदी के भारत में यह आम प्रथा थी) लेकिन बालक मूलशंकर ने निश्चय किया कि विवाह उनके लिए नहीं बना है और वे १८४६ मे सत्य की खोज मे निकल पड़े।

(ब) स्वामी दयानंद के अनुसार- दयानंद अपने आत्मचरित के पृष्ठ संख्या ६ में लिखते हैं कि- "हम पाँच भाई बहन थे, उनमें दो मेरे भाई और दो बहनें थी, जब मेरी आयु १६ वर्ष की थीं तब मेरे छोटे भाई का जन्म हुआ,

एक बार मैं रात्रि के समय एक बान्धव के घर मैं नृत्य उत्सव देख रहा था कि घर से एक भृत्य ने आकार समाचार दिया कि मेरी १४ वर्ष की बहन बहुत पीडित हो गई है आश्चर्य है कि यथोचित चिकित्सा के होते हुए भी मेरे घर लौटने के दो घंटे पश्चात उसकी मृत्यु हो गई, उस भगनी के वियोग का शोक मेरे जीवन का पहला शोक था।

जिस समय सब मेरी भगनी के चारों ओर विलाप और रैदन कर रहे थे, उस समय मैं खड़ा खड़ा यह सोच रहा था कि इस संसार में सभी को एक ना एक दिन मृत्यु के मुख में जाना होगा, इसलिए मुझे भी एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना होगा, मेरे मन में मृत्यु का भय बैठ गया, मैं मन ही मन ये सोचने लगा कि किस जगह जाने से मैं मृत्यु के यन्त्रण से बच सकूंगा।

कुछ दिन पिछे मेरे चाचा की भी मृत्यु हो गई, मेरे चाचा सद्गुणसम्पन्न सुशिक्षित व्यक्ति थे और वह मुझको बहुत प्यार करते थे इस कारण में उनके वियोग से बहुत ही व्यथित हुआ, इसके अतिरिक्त इस घटना के पश्चात मैं यह चिन्ता भी करने लगा कि मुझको भी इसी प्रकार से कालकवल बनना पडेगा, जब क्रमश: मृत्युचिन्ता बहुत प्रवल हो गई, तो मै अपने बान्धवों से पुछने लगा कि किस उपाय का अवलम्बन कर मुझे अमरत्व प्राप्त हो सकता है, स्वदेश के पंडितों ने मुझेको योगाभ्यास करने का परामर्श दिया, इसलिए अमरत्व की प्राप्ति हेतु मैंने गृहत्याग का संकल्प किया और एक दिन संध्या के समय बिना किसी को बताए मैंने गृहत्याग कर दिया, उस समय मेरी आयु २० वर्ष थी...

समीक्षा-- अब क्योकि स्वामी दयानंद एक साधारण मनुष्य थे तो स्वाभाविक है कि उनके अन्दर भी साधारण मनुष्यों की ही भांति सब गुण वा दोष मौजूद होंगे, दयानंद ने स्वयं अपने आत्मचरित में यह स्वीकार किया है कि गृह त्याग का कारण उनके मन में बैठा मृत्यु का भय था, दयानंद मृत्यु से इस प्रकार भयभीत हो चुके थे कि उससे बचने के लिए वो हर एक सम्भव प्रयास करने को तैयार थे, दयानंद ने अपने आत्मचरित में यह स्वयं लिखा है कि "मैं मन ही मन यह सोचने लगा कि किस जगह जाने से मैं मृत्यु के यन्त्रण से बच सकूंगा" उस समय स्वामी दयानंद की उम्र लगभग २० वर्ष थी, यदि दयानंद में थोड़ी भी बुद्धि होती तो शायद वह इस सत्य को समझ पाते कि चाहे वो संसार के किसी भी कोने में क्यों न चलें जायें, मृत्यु से बचना असम्भव है, जिसने जन्म लिया उसकी मृत्यु निश्चित है, और हुआ भी यही स्वामी दयानंद जिस मृत्यु के भय से, अमरत्व की खोज में पूरी जिंदगी इधर उधर भागते रहे पर अफसोस की उससे बच न सकें, और तो और मृत्यु भी इतनी भयानक और दर्दनाक हुई जिसकी स्वामी जी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी,

और गपोडिये दयानंदी यह कहते हैं कि दयानंद ने सत्य की खोज में गृह त्याग किया, अरे मूर्खों सत्य की खोज में नही, जब दयानंद की मृत्यु से फटी तो उन्होंने गृहत्याग किया, जो दयानंद मृत्यु जैसे सत्य को न समझ सका, सारी उम्र उससे बचने को इधर उधर भागता रहा, वो कितना बुद्धिमान होगा यह समझना कोई बड़ी बात नहीं,...

यह तो था स्वामी दयानंद के जन्म से लेकर उनके गृह त्याग तक का वृत्तांत, अब आगे दयानंद के गृह त्याग के बाद का वृत्तांत स्वामी जी के ही शब्दों में यहाँ ज्यों का त्यों लिखते हैं.....

६• सच्चे योगी की खोज –

अब तक हमने पढ़ा की किस प्रकार स्वामी दयानंद ने मृत्यु से बचने व अमरत्व की खोज में गृह त्याग किया स्वामी दयानंद ऐसे योगी की खोज में निकल पड़े जो उन्हें अमरत्व की प्राप्ति करा सकें, अब आगे--

उक्त जीवन चरित्र के पृष्ठ १७ में दयानंद का कथन हैं कि शैलानगर में, मैं लाला भक्त के पास ठहरा हुआ था लाला भक्त एक साधु और सुशिक्षित व्यक्ति करके प्रसिद्ध थे, वहाँ एक ब्रह्मचारी के साथ मेरी बातचीत हुई मैं उससे दीक्षा लेकर बह्मचारी के आश्रम में प्रविष्ट हो गया, और गेरूवे वस्त्र धारण करके "शुद्ध चैतन्य" नाम ग्रहण कर लिया।

पृष्ठ २० में लिखा है कि कार्तिक के महीने में एक दिन मैं सिद्धपुर पहुचाँ कारण यह था कि उस समय सिद्धपुर में एक मेले के लगने की चर्चा थी, इसके अतिरिक्त यह आशा करके की मेले के कारण अनेक योग-विद्या विशारद योगियों का समागम होगा और उनमें से किसी एक के उपदेश से मुझे अमरत्व प्राप्त होना संभव है,

पृष्ठ २१ में लिखा है कि चलते चलते मैं अहमदाबाद और बडौदा पहुचाँ, बडौदा के चैतन्यमठ नामक मन्दिर में ब्रह्मानंद और अन्यान्य ब्रह्मचारी सन्यासीयों से मिला,

पृष्ठ २२ पर लिखा है कि ब्रह्मानंद आदि सत्पुरुषों से बात करके मुझे विश्वास हो गया कि ब्रह्म अर्थात ईश्वर मुझसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है, जीव और ब्रह्म की एकता का निश्चय मुझे सम्यक् करा दिया, पहिले भी प्रायः मेरे मन में ये बात आती थी परन्तु आज इन महात्मा पुरुषों ने इस बात को मेरे मन में पुरे प्रकार से सिद्ध करके दिखा दिया, और मुझे पुरा पुरा विश्वास हो गया कि ब्रह्म मैं ही हूँ

पृष्ठ २७-२८ से प्रकट है कि दयानंद ने परमानंद परमहंस से वेदांतसार और वेदांत परिभाषा आदि की शिक्षा ग्रहण की, उसके बाद पुर्णानंद सरस्वती से सन्यास की दीक्षा लेकर सन्यासी के आश्रम में प्रविष्ट हो गए, पूर्णानंद ने उन्हे सन्यासियों की चौथी कक्षा में स्थान देकर उनका नाम दयानंद सरस्वती रख दिया,

पृष्ठ ४९ में लिखते हैं, कि १८६० मथुरा पहुँच मैं विरजानंद नामक सुपण्डित साधु के पास गया उस समय उनकी आयु ८१ वर्ष की थीं विरजानंद जन्म से ही अंधे थे और उनको उदर की पीड़ा थी उनके पास रहकर मैंने व्याकरण के साथ वेदादि ग्रंथों का अध्ययन आरम्भ किया, विरजानंद के पास पाठ समाप्त करके दो वर्ष तक मैं आगरा में रहा,

समीक्षा-- पाठकगण! ध्यान करें कि प्रथम वे एक ब्रह्मचारी के चेले बने जिसने उनका नाम बदलकर "शुद्ध चैतन्य" रखा, फिर ब्रह्मानंद आदि सन्यासियों की संगति से उनको पुरा पुरा विश्वास हो गया कि ब्रह्म मै ही हूँ,

तदुपरान्त परमानंद परमहंस अद्वैतवादी अर्थात शंकर मत के सन्यासी ने उन्हें अपना चेला बनाया,

उसके पश्चात पूर्णानंद सरस्वती (अद्वैतवादी) ने उन्हे अपना चेला बनाया और उसी ने उनका नाम "दयानंद सरस्वती" रखा, चिरकाल पर्यन्त यह उसी मत में रहे और स्वंय को पूर्णब्रह्म समझते रहे,

इसके पश्चात दयानंद नेत्रहीन विरजानंद के चेले बने और कुछ समय तक उन्हीं के पास व्याकरण, वेदादि ग्रंथों का अध्ययन किया, जीवन पर्यन्त अपनी पुस्तकों में उनको परम विद्वान श्री विरजानंद स्वामी लिखा है और अपने लिए उनका चेला होना स्वीकार किया है, वह विरजानंद भी अद्वैतवादि थे, फिर वह साधारण सन्यासियों की आकृति से हरिद्वार ऋषिकेश आदि के जंगलों में रहते रहे कोई उनका नाम भी न जानता था, संवत् १९२४ के उपरांत वह गंगा जी के निकट गांव और नगरों में ठहर कर जो लोग उनसे मिलते थे उनसे मूर्ति पूजा का निषेध किया करते थे उस समय तक उनके मन में उत्तमोत्तम भोजन वस्त्रादि की इच्छा ने प्रवेश नहीं किया था, अब तक वे अद्वैतवादी थे फिर किसी के समझाने से उन्होंने अद्वैतवाद को झूठा जानकर छोड दिया और द्वैतवादी बन गए, निदान अद्वैतवाद अर्थात शंकराचार्य के मत के खंडन में एक छोटी सी पुस्तक भी बनाई और सत्यार्थ प्रकाश में भी इसका खंडन कर गुरूदक्षिणा स्वरूप अपने गुरुजनों के मुहँ पर जूता दे मारा, और साथ ही अपने ग्यारह नियोग से उत्पन्न होने का प्रमाण दिया।

पाठकगण! ध्यान करें कि अब तक उन्होंने कितने रूप बदलें, कितने मत स्वीकार किए, किस-किस के चेले बने और किस-किस का त्याग किया, जिसने जीवन पर्यन्त अपने आपको ब्रह्म माना

उससे बढ़कर नास्तिक और कौन होगा? ऐसे पुरुष के कथन व वर्त्ताव का क्या भरोसा?

जीवन पर्यन्त जीन विरजानंद को अपना गुरु और परम विद्वान लिखते आए उन्हीं के मत को मिथ्या और झूठा कहते रहे, एक काल में परम विद्वान और गुरु लिखना और उसी के मत को झूठा ठहराना अति अज्ञानता और लज्जा की बात है,

और अंत में पाठकगण! जरा विचार करें जिस उद्देश्य से दयानंद ने गृह त्याग किया क्या दयानंद उसमें सफल रहे?क्या उन्हें कभी सच्चा योगी मिल सका? इसका निर्णय आप लोग स्वयं करें।

७• स्वामी दयानंद की बुद्धि-

अब आपको स्वामी जी की बुद्धि का नमूना उन्हीं के द्वारा लिखे 'दयानंद आत्मचरित' से दिखाते हैं-

दयानंद आत्मचरित पृष्ठ ४८-४९ पर चांड़ालगढ़ के वर्णन में लिखा है कि खोटी प्रारब्ध से इस जगह मुझे एक बड़ा दोष लग गया अर्थात मुझे भंग पीने की ऐसी आदत हो गई कि कभी-कभी तो उसके कारण मैं सर्वथा बेहोश हो जाया करता था, एक बार चांडालगढ़ निकटस्थ एक गांव के शिवालय में एक दिन रात्रियापन के लिए उपस्थित हुआ, भंग से उत्पन्न मादकता के वश मे मुझे वहाँ गहरी नींद आ गई , मेरे विवाह के संबंध में पार्वती के साथ महादेव की बात-चीत हो रही है, ऐसा एक स्वप्न देखकर में जाग गया, प्रात: काल एक स्त्री ने मुझे दही दिया मैंने उसे खा लिया, दही बहुत खट्टा था इसलिए भंग का नशा उतरने को एक अच्छी औषधि हो गई,

समीक्षा-- पाठकगण! विचार करें, कि पहिले दिन दयानंद ने भंग पी और दूसरे दिन दही खाने से नशा उतरा ऐसी भंग की बुद्धि भ्रांत होने में क्या संदेह है? आप कहते हैं कि भंग के नशे में, मैं बेहोश हो जाया करता, तो दूसरे दिन ही होश हो पाता था, इससे भी स्पष्ट सिद्ध है कि उसने अपनी बुद्धि की भ्रांति से और द्वेषाग्नि के कारण स्वयं निर्मित वेदभाष्यों और सत्यार्थ प्रकाश में जो कुछ मुख में अंड संड आया बक दिया, और जो चाहाँ लिख दिया,

अर्थात ऐसे भंग के लेख और कथन पर विश्वास करना बुद्धिमानों का काम नहीं,

इसी प्रकार की घटना का वर्णन देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा रचित "दयानंद चरित" के पृष्ठ २५१ पर लिखा है कि-- दयानंद उस समय धूम्रपान किया करते थे, इसलिए अनेक लोग अति उत्कृष्ट और सुगन्धित तम्बाकू क्रय करके उन्हें उपहार में देते थे, परन्तु एक दिन की घटना से स्वामी जी ने धूम्रपान का अभ्यास छोड़ दिया, स्वामी जी एक बार लाहौर में बैठे हुए हुक्का पी रहे थे, की इतने में एक व्यक्ति ने आकर कहा- "आप स्वयं को सर्वत्यागी सन्यासी बताते हैं, क्या आपके पक्ष में इस प्रकार बहुमूल्य तम्बाकू सेवन करना विधेय है? आपको धूम्रपान करते हुए लज्जा नहीं आती" इस बात के सुनते ही स्वामी जी ने उसी क्षण धूम्रपान छोड़ने का निश्चय किया,

पाठकगण! विचार करें पहले भंग और अब धूम्रपान क्या ये ब्रह्मचारी, सन्यासी के लक्षण हैं?

क्या इन दोषों और अवगुणों को देखते हुए दयानंद को महर्षि कहा जाना चाहिए? कदापि नहीं!

पृष्ठ ४७ पर लिखा है कि मैंने एक ग्रंथ में नाड़ी चक्र का विवरण पढ़ा, वह मुझे सत्य प्रतीत नहीं हुआ, प्रत्युत उस विषय में संशय उत्पन्न हो गया, संशयजाल को तोडने के अभिप्राय से मैं एक दिन नदी के भीतर से एक शव खींच लाया, और एक तेज छूरी द्वारा शव को चीरना प्रारंभ किया, मैंने दिल को उसमें से निकाला और फिर नाभि से पसली तक चीर दिया, इसी प्रकार सिर और गर्दन से एक-एक भाग को काटकर अपने सम्मुख रख लिया, उसके पश्चात चीरें हुए शव के अनेक अंगों को मिलाकर देखने लगा, परन्तु उसके किसी अंग में भी ग्रंथवर्णित नाड़ीचक्र का निदर्शन मात्र भी न पाकर उस शव के साथ ही उस ग्रंथ को भी टुकड़े टुकड़े करके नदी में फेंक दिया

समीक्षा-- शाबाश ब्राह्मण सन्यासी होकर मुर्दा लाश को चीरने फाडने वाला नीच कर्म आप जैसे मंदबुद्धि व्यक्ति को ही शोभा देता है,

पाठकगण! विचार करके बताए, भला ये द्विजातियों और सन्यासियों का धर्म है, व नीच कर्म, इस प्रकार महामुर्खों वाले काम के लिए तो स्वामी जी को चुतियापंति का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार मिलना चाहिए स्वामी दयानंद के इस लेख को पढ़कर इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता की स्वामी जी उन महामुर्खों में से है जो मुर्दा लाश में नाड़ी (Pulse) ढुढ़ रहे है धन्य है आप और आपकी बुद्धि अच्छा हुआ आपने उसमें मन, आत्मा आदि नहीं ढूढ़ा अन्यथा न पाकर उन्हें भी मिथ्या ही बोल देते,

निसन्देह भंग और धूम्रपान से हुई बुद्धि की भ्रांति ने आपसे यह अनुचित कर्म करवा दिया।

दयानंद आत्मचरित्र पृष्ठ ३७-३८ से प्रकट है कि उन्होने जिन पुरूषों को अपनी आँखों से पशुवध करतें मांस भक्षण करते देखा, जिन्हे हाथों में पशुमुंड लिए बैठे देखा, उन्ही से सीधा आदि लेकर भोजन किया,

फिर पृष्ठ ६५ मे लिखा है कि- "मैं एक भयानक जंगल मे गुम गया क्रमशः चारों दिशाएं संध्या के अंधकार में आवृत होने लगी, उस समय मैने थोड़ी दूर पर ही अग्नि का प्रकाश देख वही एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठ गया, वहाँ के लोग मेरे निकट मुझे अपनी झोपडी में बुलाने आए परन्तु मैंने उनका भोजनादि सत्कार स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे सब मूर्तिपूजक थे,

समीक्षा-- धन्य हे! स्वामी जी आप और आपकी बुद्धि, जिसे अपनी आँखों से पशुवध करतें और मांस खाते देखा जिनके हाथों में कटे हुए पशुमंड देखें उससे सीधा आदि लेकर भोजन करना तो स्वीकार किया और मूर्तिपूजकों के सत्कार का तिरस्कार, ये बुद्धि की भ्रांति का अंधकार है वा द्वैषाग्नि की प्रेरणा का अंधकार यह भी ध्यान रहे कि स्वामी जी मूर्तिपूजक के रजविर्य से ही प्रकट हुए मूर्तिपूजक के अन्न से ही उनका शरीर बढ़ा, जब तक सब जगह समाज स्थापित नहीं हुए मूर्तिपूजक के अतिरिक्त किसी के भोजनादि सत्कार से पालन पोषण हुआ, ऐसा लेख लिखते हुए आपको लज्जा नहीं आई।

आप आपने यजुर्वेद भाष्य १३/४८-४९ आदि मंत्रों में भी पशु हिंसा अर्थात नीलगायादि पशुओं को स्पष्ट शब्दों में मारना लिखाते है

आपको वेदों में पशुहिंसा लिखते मांसभक्षियों के हाथों सीधा लेकर भोजन करते लज्जा नहीं आई और मूर्तिपूजकों के सत्कार का तिरस्कार सिर्फ इस कारण कर देते हैं क्योंकि वे मूर्तिपूजक है यही है आपकी बुद्धि

पाठकगण! उक्त लेख में गिनवाये दयानंद के दोषों को पढ़कर स्वयं विचार करें कि जीवन पर्यन्त धूम्रपान करने वाले, लाश की चिर फाड करनेवाले, मांसभक्षकों के हाथ से भोजन करनेवाले, वेदों में पशुहिंसा लिखने व उसका समर्थन करने वाले दयांनंद की बुद्धि को देखते हुए बताए-

क्या ऐसा व्यक्ति ब्रह्मचारी, सन्यासी या फिर महर्षि कहलाने योग्य है? कदापि नहीं!

८• समाज सुधारकर या फिर समाज को अज्ञान रूपी अंधकूप में धकेलने वाला-

आर्य समाजी गपोड़ा- स्वामी दयानन्द ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों और रूढियों-बुराइयों को दूर करने के लिए, निर्भय होकर उन पर आक्रमण किया, वे 'संन्यासी योद्धा' कहलाए, उन्होंने जन्मना जाति का विरोध किया तथा कर्म के आधार वेदानुकूल वर्ण-निर्धारण की बात कही, वे दलितोद्धार के पक्षधर थे, उन्होंने बाल विवाह का निषेध किया तथा विधवा विवाह का समर्थन किया...

समीक्षा-- शायद दयानंदी लोग स्वामी जी को ठीक तरह से समझ ही न पाये, क्योकि सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वास को बढ़ने

वाले स्वयं दयानंद ही थे, भंग वे पीते थे, धूम्रपान वे करते थे, प्रथम सत्यार्थ प्रकाश और वेदभाष्यों में पशुहिंसा, पशुयज्ञ, मांस पिंड देना, आदि को धर्म का अंग बताया, मांसभक्षियों के हाथों का भोजन वे करते थे, नियोग के नाम पर सामूहिक व्यभिचार का आरंभ उन्होंने किया, ४८ वर्ष के बुढ़ो का २४ वर्ष की नवयुवती से विवाह उन्होंने आरंभ करवाया, विधवा विवाह का विरोध करते हुए चतुर्थ समुल्लास में विधवा विवाह की हानियां उन्होंने गिनवाई, सूर्य पर मनुष्य उन्होंने बसाये, एक स्त्री के एकादश (११) पति बताकर उनका पतिव्रत धर्म खंडित करवाने वाले वे थे आदि आदि अगर गिनवाने लगें तो शब्द कम पड़ जाएंगे,

अब आगे सुनिये आर्य समाजीयों के अनुसार उन्होंने जन्मना जाति का विरोध किया तथा कर्म के आधार वेदानुकूल वर्ण-निर्धारण की बात कही, वे दलितोद्धार के पक्षधर थे,

समीक्षा-- कम अक्ल भुलक्कड़ दयानंदीयों को में याद दिला दूँ कि स्वामी दयानंद स्वंय जन्मना जाति को मानने वाले थे ये रहा प्रमाण-

स्वामी जी अपनी पुस्तक 'संस्कार विधि' में लिखते हैं कि गोद के बच्चों के नाम रखते समय भी उनके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होने का पूरा ध्यान रखना चाहिए, वह लिखते हैं--

"नामकरण का काल जिस दिन जन्म हो, उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ११वें व १०१ (एक सौ एक) में अथवा दूसरे वर्ष के आरंभ में, जिस दिन जन्म हुआ हो, नाम धरे" ~(संस्कार विधि, पृष्ठ ६३)

"देव अथवा जयदेव ब्राह्मण हो तो देव शर्मा, क्षत्रिय हो तो देव वर्मा, वैश्य हो तो देव गुप्त और शूद्र हो तो देव दास इत्यादि...बालक

का नाम धर के पुनः 'ओं कोसि.' ऊपर लिखित मंत्र बोलना.''
~(संस्कार विधि, पृष्ठ ६६)

दयानंद ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ ९२ पर **"पद्भ्याँ शूद्रो"** का अर्थ करते हुए लिखते हैं--

जैसे पग सबसे नीच अंग हैं, वैसे मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है'

सत्यार्थप्रकाश, में 'शूद्रों को निर्बुद्धि और मूर्ख बताते हैं

यजुर्वेद अध्याय १४/९ में वैश्य और शुद्रों की पशु से तुलना करते हुए लिखते है कि--

(षष्ठवाट्)- पीठ से बोझ उठानेवाले ऊँट आदि के सदृश वैश्य,
(उक्षा)- सींचनेहारे बैल के तुल्य शूद्र,

यजुर्वेद ३०/२१ मे लिखते है कि--

(चाण्डालम्)- भंगी को, (खलतिम्)- गंजे को, (कृष्णम्)- काले रंग वाले, (पिङ्गाक्षम्)- पिले नेत्रों से युक्त पुरूष को दूर कीजिये,

दयानंदीयों का कहना है कि दयानंद ने कर्म के आधार वेदानुकूल वर्ण-निर्धारण की बात कही

दयानंदीयों ने शायद दयानंद के वेदभाष्य नहीं पढ़ें नहीं तो जान पाते कि दयानंद वेदानुकूल नहीं बल्कि पशुओं के कर्मानुकूल पशुओं से तुलना करके वर्ण-निर्धारित करते हैं जैसे अपने यजुर्वेदभाष्य १४/९ में वैश्यों के ऊँट और शुद्रों को गधे बैलादि के तुल्य बताया है

शायद यही कारण है कि दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास में शूद्रों की स्त्रीयों के साथ नियोग का समर्थन तो किया है पर शूद्र पुरूषों को नियोग के अधिकार से यह कहकर वंचित रखा कि स्त्रियाँ सिर्फ अपने से उच्च वर्ण के पुरूष के साथ नियोग करें इस प्रकार दयानंद ने अपनी शूद्र विरोधी मांसिकता जगजाहिर कर दी,

दयानंदीयों के अनुसार उन्होंने बाल विवाह का निषेध किया तथा विधवा विवाह का समर्थन किया- -

इस बात को तो मैं भी मानता हूँ कि स्वामी जी ने बाल विवाह का निषेध कर, अधेड उम्र के विवाह का समर्थन किया, स्वमी दयानंद अधेड़ उम्र के समाजी रंडवों को ध्यान मे रखते हुए सत्यार्थ प्रकाश मे लिखते है कि सबसे उत्तम विवाह २४ वर्ष की कन्या और ४८ वर्ष के बुढ़ों का है, और जहाँ तक प्रश्न विधवा विवाह का है तो मुझे लगता हैं दयानंदी अपने ग्रंथों का ही अध्ययन नहीं करते अगर करते तो जान पाते कि स्वामी दयानंद विधवा विवाह के घोर विरोधीयों मे से थे, सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास में दयानंद ने बकायदे पुनर्विवाह के दोषों पर लम्बा चौड़ा और बचकाना सा लेख लिखा है

स्वामी दयानंद विधवा स्त्री को सिर्फ और सिर्फ बच्चा पैदा करने की मशीन समझते थे उनके मतानुसार विधवा स्त्री चाहे तो किसी परपुरूष से नियोग कर पुत्र उत्पन्न कर लें, परन्तु पुनर्विवाह नही करें, स्वामी दयानंद के अनुसार पुनर्विवाह से स्त्री का पतिव्रत धर्म खंडित हो जाता है परन्तु ग्यारह अलग-अलग पुरुषों के साथ सोकर भी उसका पतिव्रत धर्म खंडित नहीं होता, यही तो स्वामी जी के भंग की तंरग है नशे में क्या क्या बक गए कुछ ख्याल है

पाठकगण! स्वयं विचार करें दयानंद समाज सुधारक थे या फिर समाज को घोर अंधकार में धकेलने वाले सनकी व्यक्ति...

९• स्वामी दयानंद सनातन धर्म, सनातन संस्कृति को नष्ट करने वाले एक नीच षड्यंत्रकारी-

स्वामी दयानंद के लिए अंग्रेजी शासन किसी स्वर्ण युग से कम न था, उनके अनुसार उन्होंने सनातन धर्म के विरुद्ध जितना विष उगला यदि अंग्रेजों ने उनकी रक्षा न की होती तो जरूर कोई न कोई उन्हें मरवा डालता

१८८० के थियोसोफिस्ट पत्र में स्वामी जी बताते हैं कि "यदि अंग्रेजी राज्य न होता तो मैं जो इतनी बार फर्रूखाबाद आया, ब्राह्मण मुझे कभी जीवित न छोड़ते, किसी से मरवा डालते,

पाठकगण! के मन में प्रश्न उठ रहा होगा कि आखिर अंग्रेजी सरकार दयानंद पर इतनी मेहरबान क्यों थी, तो इसका जबाव है-- **'डिवाइड एंड रूल'** अंग्रेज़ों की नीति "महान स्वतंत्रता सेनानी सुभाषचन्द्र बोस ने अंग्रेजों की नीति का तीन शब्दों में खुलासा करते हुए लिखा है- डिवाइड एंड रूल अर्थात फूट डालो और राज करो"

स्वामी दयानंद यही कर रहे थे, उनके नवीन मत प्रचार से सनातन धर्म मे बिखराव की स्थिति उत्पन्न होने लगी थी और अंग्रेजों की तो शुरू से यही नीति रही थी, जिसे स्वामी दयानंद ने और आसान बना दिया, स्वामी दयानंद आखिर ऐसा क्या कर रहे थे देखें--

दयानन्द सरस्वती के बारे में क्वीन्स कॉलेज के प्राचार्य रुडॉल्फ होर्नले (Rudolf Hoernley) ने यह बात लिखी—

दयानन्द हिंदुओं के मन में यह बात भर देना चाहते हैं कि आज का हिंदूधर्म, वैदिक हिन्दू धर्म के पूर्णतया विपरीत है, और जब यह बात हिन्दुओं के मन में बैठ जायेगी तो वे तुरंत हिंदूधर्म का त्याग कर देंगे; पर तब दयानन्द के लिए उन्हें वैदिक स्थिति में वापस ले जाना सम्भव न होगा, ऐसी स्थिति में हिंदुओं को एक विकल्प की खोज होगी जो उन्हें हिंदू से ईसाई धर्म की ओर ले जायेगी।

स्रोत: The Christian Intelligence, Calcutta, March 1870, p 79 and A F R H quoted in The Arya Samaj by Lajpat Rai, 1932, p 42 quoted in Western Indologists A Study in Motives.htm, Purohit Bhagavan Dutt

अब आपको दयानंद का असली चेहरा दिखाते है- जबसे न्यूयॉर्क में थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना हुई तभी से स्वामी दयानंद ने उनसे सम्पर्क साधना आरंभ कर दिया, और १३ अप्रैल १८७८ में स्वामी दयानंद ने थियोसोफिकल सोसायटी को पत्र लिखकर थियोसोफिकल सोसायटी से यह निवेदन किया कि वह अपना प्रधान कार्यालय न्यूयॉर्क से मुम्बई ले आए, उसके जबाव में थियोसोफिकल सोसायटी की तरफ से जबाव में जो पत्र आया वो ये है उसमें लिखा था—

The Theosophical Society, New York, May 22nd 1878.

To the Chief of the Arya Samaj.

HONOURED SIR,

You are respectfully informed that at a meeting of the Council of the Theosophical Society, held at New York on the 22nd of May 1878, the President in the chair upon motion of Vice-President A. Wilder seconded by the corressponding Secre tary H. P. Blavatsky, it was unanimously resolved that the society accept the proposal of the Arya Samaj, to unite with itself, and

that the title of this Society be changed to

" The Theosophical Society of the Arya Samaj of India. *

Resolved, that the Theosophical Society for itself and branches in America, Europe and else-where, hereby recognize Swami Dayanand Saraswati, Pandit, Founder of the Arya Samaj, as its lawful Director or Chief.

Awaiting the signification of your approval and any instructions that you may be pleased to give.

I am, honoured sir, by order of the Council,

Respectfully yours,

(Sd.) AUGUSTUS GOSTAM,

Recording Secretary

(स्त्रोत- LIFE & TEACHINGS OF SWAMI DAYANAND: Swami Dayanand and Theosphists- P. 162,163, एवं देवेन्द्रबाबु रचित 'दयानंद चरित', पृष्ठ २७५,२७६)

****

जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है-

थियोसोफिकल सोसाइटी, न्यूयॉर्क मई २२, सन् १८७८ ई•

सेवा में प्रधान आर्य समाज-

माननीय महोदय ! आपको विनयपूर्वक सूचना दी जाती है कि थियोसोफिकल सोसाइटी की कौन्सिल के एक अधिवेशन में, जो न्यूयॉर्क में २२ मई १८७८ को सामयिक प्रधान के सभापतित्व में संघटित हुई हुआ ए• वाइल्डर साहब उपसभापति के प्रस्ताव और पत्रव्यवहार कर्ता मन्त्री एच• पी• ब्लैवाटस्की के अनुमोदन पर सर्वसम्मति से निर्धारित हुआ है कि यह सभा आर्य समाज के इस प्रस्ताव को कि सभा उक्त समाज के साथ मिल जावे और इस समाज का नाम परिवर्तित करके "भारतवर्षीय आर्य समाज की थियोसोफिकल सोसाइटी" रखा जावे स्वीकार करती है,

यह भी निश्चय हुआ कि थियोसोफिकल सोसाइटी अपनी और अपनी शाखाओं की ओर से जो अमेरिका, यूरोप और अन्य प्रदेशों में हैं, स्वामी दयानंद सरस्वती पंडित, संस्थापक आर्य समाज को अपना नियमानुकूल अधिनायक मानती है,

आपकी स्वीकारी की सूचना और किन्हीं सुझावों की जो आप देवें प्रतीक्षा करता हुआ"

मैं हूँ, माननीय महोदय, कौन्सिल की आज्ञानुसार

आपका

(हस्ताक्षर) आगस्टम गस्टम,

रिकॉर्डिंग सेक्रेटरी - (अनुवादक)

(स्त्रोत- LIFE & TEACHINGS OF SWAMI DAYANAND: Swami Dayanand and Theosphists- P. 162,163, एवं देवेन्द्रबाबु रचित 'दयानंद चरित', पृष्ठ २७५,२७६)

****

पत्र में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि यह सभा आर्य समाज के इस प्रस्ताव को कि सभा (अर्थात थियोसोफिकल सोसाइटी) उक्त

समाज (अर्थात आर्य समाज) के साथ मिल जावें और इस सभा का नाम परिवर्तित करके "Theosophical Society of the Arya Samaj" रखा जावें स्वीकार करती है,

उक्त पत्र से यह साफ हो जाता है कि किस प्रकार स्वामी जी ईसाई मिशनरीयों से निवेदन कर रहे हैं कि आओं आर्य समाज के जमाता हमारे साथ मिल कर भारतीय सनातन संस्कृति को नष्ट करने में मेरी सहायता करें और अपने मत का प्रचार कर नास्तिकवाद को बढ़ाने में आर्य समाज का सहयोग करें,

पाठकगण! विचार करें यदि दयानंद का काम वैदिक धर्म का प्रचार ही था तो क्या दयानंद को पुरे भारतवर्ष में कहीं वैदिक लौग नहीं मिलें, जो वे ईसाइयों के सामने गिडगिडा रहे थे, आखिर दयानंद ने उस गौभक्षक ईसाई मिशनरी सभा में ऐसे कौन से वैदिक गुण देख लिए जो उन्हें सनातनधर्मीयों मे न दिखें, दरअसल स्वामी जी स्वार्थ, अंहकार और द्वैषाग्नि में इतने अंधे हो चुके थे कि अपने स्वार्थपूर्ति के लिए वो किसी भी स्तर तक गिर सकते थें वर्ना दयानंदी जबाव दें कि यदि दयानंद का मन साफ था तो उन्होंने सनातनधर्मीयों के साथ मिलकर वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार क्यों नहीं किया और उस गौभक्षक ईसाई मिशनरी सभा में ऐसा क्या देख लिया जो ना तो वैदिक धर्मि थे और ना ही इस भारतभूमि के, फिर ऐसा क्या कारण था जो थियोसोफिकल सोसाइटी को भारत में बुलाने व उसका हिस्सा बनने के लिए उनकी लार टपक रही थी, ऐसा करते हुए दयानंद को लज्जा नहीं आई,

पाठकगण ! स्वयं निर्णय करें दयानंद वैदिक धर्म के प्रचार थे या फिर सनातन संस्कृति को नष्ट करने वाले एक षड्यंत्रकारी...

१०• स्वामी दयानंद की मृत्यु, उनके अंतिम शब्द व उनके अंतिम संस्कार का संक्षिप्त विवरण-

वर्ष १८८३ में स्वामी जी महाराज जसवंत सिंह से भेंट करने जोधपुर पहुंचे, जोधपुर नरेश महाराजा जसवंत सिंह अत्यंत विलासी थे, अनेक रानियों के होने पर भी महाराजा नन्हीबाई (नन्ही जान) नामक एक वेश्या, के प्रेमजाल में फँसे थे।

एक दिन स्वामी जी अचानक राजदरबार में पहुँचे, वहाँ महाराजा के साथ नन्हीबाई भी उपस्थित थी, महाराजा की इस चरित्र हीनता को देखकर स्वामी जी ने कहा, "सिंह होकर कुतिया का शिकार करते हो?" ~(मधुर अथैया लिखित- स्वामी दयानंद सरस्वती जीवन चरित्र पृष्ठ ६३)

समीक्षा-- शाबाश एक ब्रह्मचारी सन्यासी होकर स्त्री को गालियाँ बकना आपको ही शोभा देता है इस सबका उत्तरदायी व्यभिचारी राजा को तो आपने सिंह की उपमा दे दी और नन्ही जान को कुतिया ये आपकि दौगलीनिति नहीं तो क्या है?

ये तो सन्यासी वाले लक्षण नहीं है एक सन्यासी के लिए तो क्या स्त्री और क्या पुरूष सब एक समान है फिर एक के लिए कुतिया और दूसरे को सिंह की उपमा कैसे? हो सकता है आपने व्यभिचारी राजा को सिंह इसलिए बोला क्योकि आपकी राजा से फटती थीं, आपके लक्षण से तो यही प्रतित होता है,

फिर आगे लिखा है कि-- इस बात से नन्ही जान स्वामी जी से अत्यंत क्रोधित हो उठी, नन्ही जान स्वामी जी की हत्या का षड्यंत्र

रचने लगी, उसने रसोइये जगन्नाथ के माध्यम से २९ सितंबर १८८३ की रात्रि को दूध में विष मिलाकर पिलवा दिया, जिससे उनका स्वास्थ्य खराब होने लगा, उल्टी और दस्त रूकने का नाम नहीं लेते, उदर शूल और यकृत में सूजन के साथ-साथ स्वामी जी को अत्यधिक शारीरिक दुर्बलता अनुभव होने लगी।

और इस प्रकार महीनों की दर्दनाक पीड़ा सहने के बाद ३० अक्तूबर १८८३ ई. दीपावली की शाम को स्वामी दयानंद की मृत्यु हो गई, मृत्यु से पहले स्वामी दयानंद के अंतिम शब्द थे-

'हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा! तूने अच्छी लीला की!

समीक्षा-- स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि—

"चाहे कोई कितनी भी चतुराई करें परन्तु अन्त में सच-सच और झूठ-झूठ हो जाता है" ~(सत्यार्थ प्रकाश, पृ.३५३)

अब स्वामी जी के इस सिद्धान्त के आधार पर स्वामी जी का अन्त देखते हैं, ३० अक्तूबर १८८३ ई. को शाम के समय स्वामी जी पलंग पर सीधे लेटे हुए थे, उन्होंने कहा--

"हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा! तूने अच्छी लीला की!" ~(दयानन्द जीवन चरित्र)

स्वामी जी ने अपने साहित्य में कहीं भी ईश्वर और सत्पुरूषों के कर्मों को लीला नहीं कहा है लेकिन अन्तकाल आया तो जाते जाते वह ईश्वर के कर्म को भी 'लीला' कह गए, इससे समझा जा सकता

है कि संसार से विदा होते समय उनके हृदय में ईश्वर के प्रति किस प्रकार के भाव थे,

स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश में धूर्त, ठग और धोखेबाज़ों को 'पोप' की संज्ञा देते हुए उनके बुरे कामों को 'लीला' कहते है, वे लीला का अर्थ बताते हुए लिखते है--

"अर्थात् राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ने देना, अच्छे पुरूषों का संग न होने देना, रात दिन बहकाने के सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करना है" ~(सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास)

क्या यह मानना सही है कि ईश्वर लीला करता है?

स्वामी जी ईश्वर में इच्छा का होना नहीं मानते थे, वह कहते थे--

"ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं" ~(सत्यार्थ प्रकाश,सप्तम समुल्लास)

इसके बावजूद उन्होंने अपने अंतिम कथन में ईश्वर में इच्छा का होना भी माना है, इस तरह हम देखते हैं कि जिन बातों को वह ईश्वर की महिमा के प्रतिकूल मानते थे, अपने अंत के एक वाक्य में वह ईश्वर के लिए ऐसी दो बातें कह बैठे, यही तो उनके भंग की तंरग है भंग के नशे में जो कुछ मुहँ में अंड संड आया बक दिया और जो मन में आया सो लिख दिया अब पाठकगण! विचार करें जो अपने मत विरुद्ध ही बातें करें ऐसे भंगेडी के लेखों का क्या प्रमाण?

दयानंद का अंतिम संस्कार-

बताया गया है कि दो मन (८० किग्रा.) चन्दन, दस मन (४०० किग्रा.) पीपल की लकड़ी, चार मन (१६० किग्रा.) घी, पांच सेर कपूर, एक

सेर केसर, दो तोला कस्तूरी आदि सामग्री स्वामी जी की चिता को जलाने में ख़र्च की गई।

उनकी अन्तिम संस्कार के ख़र्चे को आज जोड़ा जाए तो लगभग १० से १२ लाख रुपये बैठता है। और स्वामी जी 'संस्कारविधि' के पृष्ठ १४१ पर प्रत्येक मृतक को इतनी ही सामग्री के साथ जलाना ही वैदिक संस्कार लिखा है, और लिखते हैं कि जो कोई दरिद्र हो तो न्यून से न्यून २० किग्रा घी अवश्य होना चाहिए और जो इतना भी घृतादि न होए तो न गाड़े, न जल में छोडे, न दाह करे, किन्तु दूर जाके जंगल में छोड आवें,

समीक्षा-- वाह रे! दयानंद तेरी बुद्धि, ये संस्कार विधि जरूर भंग के नशे में लिखी होगी, इतनी सामग्री हो तो अंतिम संस्कार हो नहीं तो शव को जंगल में फेंक दें, जिस दिन दयानंद के पचास, सौ चेलों की लाशें जंगल में पड़ी मिलेगी उस दिन गुरूआज्ञा का फल प्रकट होगा।

उचित होता कि दयानंदी गुरु आज्ञा का पालन करते हुए दयानंद के अंतिम संस्कार में बेकार का इतना धन खर्च करने की बजाय दयानंद की लाश को दूर कहीं जंगल में छोड़ आते, इस प्रकार जो धन और खाद्यय सामग्री बचती उससे लगभग १० परिवारों के एक वर्ष का भोजन का प्रबंध हो जाता,

दयानंद आत्मचरित लिखने का मेरा उद्देश्य सिर्फ इतना है कि हमारे सनातनी भाई दयानंद के असली जीवन चरित्र के बारे में ठीक-ठीक जान सके, इससे पहले कि यह सत्य हमेशा हमेशा के लिए इतिहास के अंधेरे में खो जाएं, क्योकि हम सभी जानते हैं, कि जब भी हम किसी आर्य समाजी द्वारा तैयार दयानंद जीवन चरित्र

पढते है तो, हम केवल वही पढ़ और समझ पाते हैं जो वो हमें दिखाना चाहता है या कहें जो वो हमारे दिमाग में डालना चाहता है, फिर चाहे वो सत्य हो या फिर असत्य,

लेकिन उसमें कितना सत्य और कितना असत्य लिखा है वो हम तभी जान पाते हैं जब हम दयानंद द्वारा लिखित "दयानंद आत्मचरित" पढ़ते है, और इस पुस्तक के माध्यम से मैंने वही सत्य लोगों के सामने रखने का प्रयास किया है, आशा है इस पुस्तक से सभी को बहुत लाभ होगा,

नवीन आर्य समाजीयों से विशेष निवेदन है कि जब भी वो इस पुस्तक को पढ़े तो शांत मन से विचार करें, तभी सत्य और असत्य का निर्णय हो सकेगा,

आशा करता हूँ यह पुस्तक सभी के लिए लाभकारी सिद्ध होगी,

~उपेन्द्र कुमार 'बागी'